समय बे-समय

देवेंद्र

समय बे-समय

वह वसंत का खुश्क महीना था। रोज की तरह निकम्मा, उचाट और थका हुआ दिन बिना किसी हलचल के चुपचाप बीतता चला जा रहा था। कस्बे की भीड़ और शोर से अपने को बचाता हुआ विश्वंभर सड़क से इस एकांत हिस्से की ओर टहलते हुए सोच रहा था। जबकि उसके सोचने में न कोई तुक थी, न तर्क। फिर भी... पिछले कई

https://www.hindiadda.com/samay-be-samay-devendra/

महीनों से उसके मन में हत्या के विचार तरह-तरह से उभरते। बे-सिलसिलेवार और बे-तरतीब हत्या के विचार दबे पाँव चुपके से आकर उसे अकसर मजबूर कर देते।

वह जब भी हत्या के बारे में सोचता उसे भीतर से डर लगता। लोग कैसे किसी की हत्या कर देते हैं? ऐसा करने वाले किन मानसिक दशाओं से गुजरते होंगे? उसे लगता, हत्या करने वाले एकदम दूसरे ढंग के आदमी होते होंगे। वह किसी हत्यारे को बहुत करीब से देखना, जानना और समझना चाहता था। वह उसके सपनों के बारे में जानना चाहता था।

विश्वंभर को हमेशा लगता कि एक हत्यारे के लिए पुलिस, कानून और जेल इन सबसे ज्यादा खतरनाक उसके अपने सपने होते होंगे। चालाक से चालाक आदमी अपने को जेल, कानून और पुलिस से भले ही बचा ले, लेकिन नींद और सपनों को लेकर वह क्या करेगा?

पिछले दिनों उसकी मुलाकात एक ऐसे आदमी से हुई जो पेशेवर हत्यारा था। लोगों ने उसके बारे में बताया कि वह पैसे लेकर बहुत दूर-दूर तक हत्याएँ करने जाता है। विश्वंभर ने उस आदमी को देखा-एकदम दुबला-पतला। बल्कि वह तो कुछ-कुछ लँगड़ाकर भी चल रहा था। पचास-पचपन के बीच कोई उम्र होगी। देखने से तो यही लगता कि वह बकरी भी नहीं मार सकता है।

बातचीत के क्रम में विश्वंभर ने उससे पूछा कि, आप आदमियों की हत्या कैसे कर लेते हो? वह थोड़ी देर तो टालमटोल करता रहा, लेकिन फिर हँसने लगा, 'आदमी को तो मारना बहुत आसान है।'

'क्या किसी की हत्या करने जाते समय तुम कोई नशा लेते हो?' विश्वंभर अपनी जिज्ञासाओं से उसे कुरेद रहा था।

'नहीं, ऐसा करना कतई जरूरी नहीं।' उस आदमी ने बताया, 'बल्कि नशा करने के बाद तो खतरा और बढ़ जाता है। खतरा! जो इस मुश्किल से लगने वाले एकदम आसान काम को करते हुए आपके आसपास ब-मुश्किल आधा-एक घंटा तक गुजरता रहता है। उसके बाद आप इतमीनान से लोगों के बीच लोगों की ही तरह गुजर सकते हैं। न तो आपके शरीर से किसी तरह की बास आती है, न चेहरे पर कोई भय होता है।'

'तुम्हें एक आदमी की हत्या के लिए कितने पैसे मिल जाते हैं?' विश्वंभर के यह पूछने पर वह थोड़ी देर तक सोचता रहा और अनुमान लगाने लगा, 'कभी-कभी तो एक पैसा

नहीं मिलता। मुफ्त में भी यह पाप करना पड़ जाता है। लेकिन कभी पैसा ज्यादा भी मिल जाता है। यह सब इस बात पर निर्भर करता है कि आप किस आदमी के लिए, और किस आदमी की हत्या कर रहे हैं। बीस-पच्चीस साल पहले एक हत्या का रेट औसतन बीस-बाइस हजार होता था। लेकिन आजकल कोई भाव नहीं। चार-पाँच हजार मुश्किल से मिलता है। हम गाँव में ही यह काम करते हैं। रात के समय। शहर में खतरा कम होता है। गवाह भी नहीं मिलते हैं। रेट भी ज्यादा है। लेकिन हमारी कोई पहुँच वहाँ नहीं है।'

विश्वंभर ध्यान से उसका चेहरा देख रहा था। आम तौर पर ऐसे लोग आँखें मिलाकर बात नहीं करते। बात-बेबात झूठ बोलने की आदत होती है। उसकी हँसी में सूखी पत्तियों के बीच साँप रेंगने जैसी खड़खड़ाहट होती। बीच-बीच में आम आदमी जैसी ही शिकवा-शिकायतें, 'आजकल जमाना बहुत खराब हो गया है।'

'आप जब किसी की हत्या करते हैं तो आपको कैसा लगता है**?**' विश्वंभर ने पूछा।

फिर वही हँसी। सूखी पत्तियों की खड़खड़ाहट जैसी। 'कुछ विशेष नहीं,' वह सोचने लगा और बताया, 'हाँ, कुछ भी तो खास नहीं लगता। बस, एक काम, जिसे हर हाल में पूरा करना है। पूरा होने के पहले का चिर परिचित तनाव। और पूरा हो जाने के बाद फिर वही हिसाब-किताब।'

विश्वंभर बहुत गौर से उस आदमी को देख रहा था। एक सामान्य आदमी की ही तरह सीधा-सादा सोचने का तरीका। जैसे व्यापारी व्यापार के बारे में सोचता है। जैसे कोई जज फैसला लिखता है। यह जानते हुए कि उसका फैसला सच नहीं है। वह झूठा फैसला लिखता है, और उसे ही सच मानता है। अपना-अपना जीवन-कर्म हर आदमी तय कर लेता है। जैसे एक कसाई बकरा काटता है। जैसे कोई मुर्गा खाता है। 'आखिर आप मुर्गा या बकरा क्यों खाते हैं? जबकि खाने के लिए दुनिया में ढेर सारी चीजें हैं - वह आदमी विश्वंभर से पूछ रहा था - बस इतनी सी ही तो बात है कि आप एक स्वाद के शिकार हैं। वह आपकी आदत है। आपके पास वह कौन सी मशीन है जिससे आप तड़पते हुए आदमी की मौत को छटपटाते बकरे या मुर्गे से ज्यादा करके आँकते हैं? आपके पास भाषा है - आप अपने दुखों की बाजीगरी कर सकते हैं। जिनके पास भाषा नहीं, उन्हें आप मार डालेंगे? यह हक किसने आपको दिया है? फौज के लोग भी तो हमारी ही तरह हत्याएँ करते हैं - पैसा लेकर। आपकी दिक्कत दूसरी है' उसने विश्वंभर से कहा, 'आप चाहते हैं कि दुनिया आपकी तरह सोचे और यकीन करे। जबकि यह कभी संभव नहीं हो सकता।'

'आप ईश्वर में विश्वास करते हैं?' विश्वंभर ने उस आदमी से पूछा।

'हाँ, ईश्वर तो होता ही है,' उसने विश्वासपूर्वक कहा, 'और कई बार तो मैंने अपने एकदम करीब उसे महसूस भी किया है। जब भी मैं किसी की हत्या करने जाता हूँ तब ठीक पंद्रह मिनट पहले ईश्वर मेरे करीब होता है। मैं कोई चूक न कर बैठूँ, इसीलिए वह मुझे क्षण-क्षण सजग रखता और उकसाता है।'

शायद झूठ बोलना इनके पेशे का हिस्सा होता हो - विश्वंभर ने सोचा - हाँ, शायद वकीलों की तरह। अपने पक्ष के लिए ही यह लोग उत्तरदायी होते हैं।

एक दिन जब विश्वंभर शहर से आ रहा था तभी अचानक उसने देखा कि कचहरी बस स्टाप के पास एक आदमी उसके आगे वाली सीट पर आकर बैठा। उसके साथ चार-पाँच लोग और थे। कंडक्टर ने उन सबको नमस्ते किया और बस में बैठाने के लिए जगह बनाने लगा। विश्वंभर ने ध्यान से देखा - यह हंसनाथ या हंसराज, ऐसा ही कुछ नाम था उसका, वही है। बी.ए. में साथ पढ़ता था। चौदह-पंद्रह साल हो गए।

वह आदमी अपने साथ वालों को बैठाने के लिए बस में पीछे की खाली सीटों पर नजर दौड़ा रहा था तभी उसने विश्वंभर को देखा, 'अरे, तुम! कहाँ से आ रहे हो?' वह अपनी जगह से उठकर विश्वंभर के बगल वाली सीट पर आकर बैठ गया।

बातचीत के क्रम में विश्वंभर उसका नाम पकड़ने की कोशिश करता रहा - हंसनाथ या हंसराज। नाटा कद, साँवला रंग और चेचक-रू चेहरा। यह भी किसी गाँव से इंटर पास करके शहर में पढ़ने आया था। विश्वंभर के साथ उसी हॉस्टल में रहता था। पहली-पहली बार शहर और हॉस्टल के दिन। गाँव वाले लड़कों के लिए शहर एक रोमांच होता है। क्रीम, पाउडर और तरह-तरह के सुगंधित साबुन, गमकते-महकते तेलों से भरी दुकानें। गोबर से बसाते हाथ, रेह और धूल और माटी से भरी आँखों का संसार नहा-धोकर एकदम तरोताजा होता और समूह बनाकर टहलने निकल पड़ता। हाइलोजन की पीली रोशनी में जल परी की तरह उतरती साँझ। इस अजाने किन्नर लोक में गंधर्व बालाओं की उन्मुक्त खिलखिलाहटें। जागती नींद के सपने। एकांत रातों के आवारा गीत। मेस की सामूहिक हुल्लड़बाजी। कौन बनेगा विजेता? शहर के लड़के गाँव वाले लड़कों को असभ्य, गँवार, उजड्ड, जाहिल और भुक्खड़ मानकर हिकारत करते। वर्चस्व की लड़ाई और कभी-कभार हवाई फायरिंग। इन सबके बीच पाठ्यक्रमों में डूबकर जिंदगी का रास्ता टटोलते गाँव के लड़के। यह लड़का उन्हीं दिनों हॉस्टल में तमंचा लहराया करता था। विश्वंभर क्लास का तेज लड़का था। होनहार। सब इज्जत करते थे।

'क्या कर रहे हो आजकल?' उसने विश्वंभर से पूछा। थका हारा गुमसुम विश्वंभर नहीं चाहता कोई उससे यह बात पूछे। उसकी आवाज लड़खड़ा रही थी, 'नौकरी नहीं मिली। गाँव पर रहता हूँ।' उसने हँसने की कोशिश की लेकिन तेज चलती बस के हिचकोलों में एक खाली और पुराने टीन का कनस्तर खड़खड़ाने लगा। 'तुम कहाँ से आ रहे हो?' विश्वंभर ने उससे पूछा।

'मैंने तो यहीं घर बनवा लिया है। यह मेरी ही बस है। दो बसें और हैं,' उसने खिड़की के बाहर सिर निकाला और गले तक भर आई पान की पीक को एक साइकिल से जा रहे आदमी के ऊपर थूक दिया, 'आज ही जमानत हुई है। गाँव जा रहा हूँ। उनतालिस दिन से जेल में था।' उसने लापरवाही से बताया।

विश्वंभर अचकचाकर गौर से उसे देखने लगा, 'जेल क्यों गए थे?'

'एक हत्या का मुकदमा था।'

'क्या सचमुच तुमने हत्या की थी, या फँसा दिए गए थे?' विश्वंभर की जिज्ञासा बढ़ गई।

'हत्या तो मैंने ही की थी,' उसने उसी तरह लापरवाही से कहा, 'पुलिस का मुखबिर था। जब भी मेरे यहाँ घर पर रात-विरात कोई आता, जाकर थाने पर सूचना दे आता। जाति का नाई था। मैंने एकाध बार समझाया, लेकिन उसकी उम्र पूरी हो चुकी थी। एक दिन मैं शहर से आ रहा था। कोई सवारी नहीं थी। कस्बे की ओर पैदल ही आ रहा था। तेज धूप थी। मैं एक पेड़ के नीचे खड़ा होकर देखने लगा - शायद कोई ट्रैक्टर, स्कूटर या साइकिल वाला गुजरे तो उसी के साथ बैठ लूँ। तभी मैंने देखा कि वह मोटर साइकिल से चला आ रहा है। मैंने उसे रोका और कनपटी पर दाग दिया। उस समय मुझे मोटर साइकिल की जरूरत भी थी। दस-पंद्रह दिन उसी से घूमता रहा। एक दिन दारोगा जी कहने लगे - भाई साहब, हाजिर हो जाइए। एस.पी. साहब रोज पूछते हैं। मैंने सोचा, चलो हाजिर हो जाते हैं। एक जज साला बहुत बदमाश है। हर केस खारिज कर देता है। हाईकोर्ट जाना पड़ा। उनतालिस दिन लग गए। आज जाकर जमानत हुई है।'

'तुमने कैसे उसकी हत्या की?' विश्वंभर जैसे किसी तिलस्मी दुनिया में सफर कर रहा हो। जैसे कोई स्वप्न चल रहा हो। कोई किसी की हत्या कैसे कर सकता है! उसे विश्वास करने में मुश्किल हो रहा था कि आराम से बस में सफर करने वाला आदमी हत्यारा हो सकता है - एकदम आम लोगों के बीच आम आदमियों की ही तरह। उसके लेखे हत्यारे रात के अँधेरे में दबे पाँव निकलने वाले कुछ-कुछ विचित्र और भयावने

होते होंगे। उनकी आँखें लाल होती होंगी। भेड़िये की तरह चालाक और चौकन्ने वे लोग कभी हँसते नहीं होंगे। न उनकी स्मृतियाँ होती होंगी, न सपने। यह कैसा, जो आराम से बस में सफर कर रहा है। पान खा रहा है, और ऊँची-ऊँची आवाज में बात कर रहा है। 'तुमने जब उसकी हत्या की तो डर नहीं लगा? मरते समय आदमी तड़पता है। ढेर खून फैल जाता है। उसकी आँखें भयानक हो जाती हैं। तुम्हें कँपकँपी नहीं हुई देखकर?' विश्वंभर को जैसे अब भी यकीन नहीं हो रहा था।

'कैसी कँपकँपी,' उसने लापरवाही से बस में चारों ओर देखते हुए कहा, 'अब तो यह सब आदत बन गई है।'

हर दो फर्लांग पर पुलिस चौकी। तीन कोस पर थाना। जिले में कचहरी। हाईकोर्ट! सुप्रीम कोर्ट! इतना ढेर सारा सरकारी ताम-झाम और यह लोफर-लफंगा! पता नहीं क्या नाम था इसका - हंसनाथ या हंसराज! हत्या करके आराम से बस में सफर कर रहा है -विश्वंभर सोच रहा था - इसने शहर में मकान बनवा लिया है। तीन बसें चल रही हैं। कितनी आसान है इनके लिए जिंदगी, जिसे हम पहाड़ की तरह ढो रहे हैं।

'सुखिया सब संसार है, खावे अरु सोवे,

दुखिया दास कबीर है, जागे अरु रोवे।'

कस्बे से बाहर सड़क के इस एकांत में टहलते हुए विश्वंभर सोच रहा था, उसने जिंदगी का रास्ता ही गलत चुना। जबकि ढेर सारे लोग खुश हैं। जब बाजार में भूसा सोने के भाव बिक रहा हो तब अनाज का बोरा लादकर भटकने से क्या फायदा? समय तेजी से बदल रहा है। उसके पास जो है, उसकी किसी को कोई जरूरत नहीं। मुझसे कहाँ गलती हुई थी? क्या उसी दिन जब बाप ने शहर पढ़ने के लिए भेज दिया था? क्या चाहते हैं बाप लोग? एक अच्छी जिंदगी, या एक अच्छा आदमी? क्या एक साथ दोनों संभव रह गया है? एक हत्यारे समय में रहते हुए अगर आप हत्या करना नहीं जानते तो तय मानिए दूसरे लोग आपकी हत्या कर डालेंगे।

'तुम चोर, डाकू, हत्यारे या तस्कर कुछ भी हो जाते तो मुझे संतोष होता। कुछ तो ताकत थी मेरे वीर्य में।' बाप ने उसे देखकर जमीन पर थूकते हुए कहा था।

बाप के मरे हुए सपने और कुंठाएँ पिछले दस सालों से उसका पीछा कर रही हैं। पैदा करने का हिसाब माँग रही हैं। वह नहीं पाल सका बाप की अतृप्त इच्छाओं को।

वह प्रोफेसर बनना चाहता था। नौकरी की तलाश में कहाँ-कहाँ नहीं भटका। कलकत्ता, अलीगढ़, उज्जैन और दिल्ली! अकसर एक्सपर्ट लोग विद्वान आलोचक, संवेदनशील कवि और प्रतिष्ठित कथाकार आदि-इत्यादि होते। सबके बेटे थे, बेटियाँ थीं, बहुएँ, दामाद थे। वह बहुत थक गया। ट्रेन से उतरते हुए एक गिरहकट ने उसका पर्स निकालकर देखा, सिर्फ चार आने पैसे थे। गिरहकट को विश्वास नहीं हुआ। उसने उसे रोका और पूरे शरीर की तलाशी ली। कहीं कुछ न था। 'कहाँ से आ रहे हो भाई?' गिरहकट ने उसे आश्चर्य से देखते हुए पूछा।

'इंटरव्यू देकर।' विश्वंभर ने बताया।

'चलो, पहले भरपेट भोजन करो!' गिरहकट उसे पकड़कर एक ढाबे पर ले गया यह घर तक का किराया लो और चुपचाप अपने गाँव जाओ। पढ़े-लिखे हो। कुली-कबाड़ी हो नहीं सकते। बाकी यह कि यहाँ 'रिजर्वेशन' है। प्रोफेसर का बेटा प्रोफेसर। बनिया का बेटा बनिया। नेता का बेटा नेता। भिखारियों और पाकेटमारों तक ने अपने-अपने इलाके बाँट रखे हैं। अकेले अपने भरोसे क्या कर सकते हो! सोचो! नटवरलाल बनो! बीवी और बेटियों से धंधा कराओ! या हिम्मत बटोरकर हत्या करना सीखो! और कोई गुंजाइश नहीं रह गई है अब।'

- नहीं, मैं हत्या नहीं कर सकता - विश्वंभर ने एक दिन अपने-आप से कहा -इसलिए नहीं कि अभी भी मेरे भीतर किसी हितोपदेश का असर बचा रह गया है। बस, इसलिए कि मैं परले दर्जे का कायर हूँ। मैं कुछ नहीं कर सकता। किताबों ने मेरे भीतर का सब कुछ सोख लिया है। मैं अब कुछ भी नहीं कर सकता। मेरे सपनों में मेरा बाप आता है और मेरा घर। काँपते हुए डरकर मैं पेशाब कर देता हूँ। मैं जाग जाता और कस्बे की ओर भाग आता।

गर्मी की एक दोपहर पेड़ के नीचे ताश खेल रहे गाँव के लड़कों ने उससे चुहल की, 'विश्वंभर भाई, मार डालो अपने बाप को, वरना दो साल में रिटायर हो जाएँगे तो कभी नौकरी नहीं पाओगे।'

गाँव वालों को जब भी पढ़ाई-लिखाई का, किताबों का मजाक उड़ाना होता है, सब विश्वंभर से चुहल करते। वह सुनता और चुपचाप आगे बढ़ जाता। किताबें आदमी को असहाय, अकेला और निकम्मा बनाकर छोड़ देती हैं। सपनों के अनोखे और एकांत संसार में ले जातीं जहाँ आदमी पूरी तरह बधिया हो जाता है।

जिंदगी की गुत्थियाँ बहुत सोचने-विचारने से ही सुलझती हों, यह कतई जरूरी नहीं। हँसी, मजाक, उपहास और छेड़छाड़ में कही गई बातें भी कब, किस तरह और कैसे जीवन का दिशा निर्देश करने लगें, हम जान नहीं पाते। शायद लड़कों की बातें ही सच हों, बिना बाप की हत्या किए उसे नौकरी नहीं मिलेगी। आखिर वह कैसे कर सकेगा बाप की हत्या?

उसकी कई मुश्किलें थीं। एक तो हत्या की वीभत्सता वह बर्दाश्त नहीं कर पाएगा। दूसरे, उसने सुन रखा था कि चाहे जितनी सजगता से अपराध किया जाय, कोई न कोई ऐसी पहचान बची रह जाती है जिससे पुलिस अपराधी तक पहुँच जाती है। कानून के हाथ बहुत लंबे होते हैं - वह सुनता चला आया था। उसे लगता, तरह-तरह की आकृतियाँ बदलकर रहस्यमय कानून हर समय हर किसी के पीछे दबे पाँव टहलता रहता है। जासूसी कुत्ते की तरह चालाक और चौकन्ना कानून उसे डराया करता।

एक दिन उसने एक वकील से पूछा, 'मैं कानून को देखना चाहता हूँ - उसकी शक्ल कैसी होती है?'

वकील ने लापरवाही से अपने कुर्ते की झूलती हुई पाकिट को टटोला और निश्चिंत होकर पूरी तबीयत के साथ जोर से हँसा, 'जिसके पास फुर्सत हो, कुछ करना-धरना न हो, वही कानून के बारे में सोचे। इसे देखो,' वकील ने सामने तख्त पर बैठे एक बीस-बाइस साल के लड़के की ओर इशारा किया जो इतमीनान से सिगरेट पी रहा था, 'इसने पंद्रह हत्याएँ की हैं।' वकील बता रहा था, 'अगर कानून न होता तो यह ऐसा करके यहाँ इतमीनान से बैठा न होता। वाकई बहुत भयानक होता तब, जब पुलिस, कानून, अदालतें और जेलें न होतीं। वह लोग यकीनन इसे मार डालते।' वकील बता रहा था, 'लेकिन अब वह लोग इसे मारने के बदले अदालतों का चक्कर मारते हैं। इसलिए कि इसकी जमानत न होने पाए। वे लोग गवाह ढूँढ़कर ले आते हैं। आज की हत्या का मुकदमा चालीस साल बाद शुरू होता है। सुप्रीमकोर्ट! आज की सबसे बड़ी अदालत! नोना खाई ईंटों का ढेर।' -वकील ने एक ओर उपयुक्त जगह देखकर पिच्च से थूका और विश्वंभर का हाथ पकड़कर बोला, 'चलो तुम्हें दिखाएँ, कानून की सूरत!' वह कहचरी के पिछवाड़े उस अहाते की ओर ले गया जहाँ गाँव से आए हुए मुवक्किल और कभी-कभार वकील लोग पेशाब करने जाते हैं। वहाँ चारों तरफ दुर्गंध फैल रही थी। धतूरे, भाँग और भटकटैया की झाड़ों के बीच वहीं एक लड़की करीब-करीब अधनंगी लेटी पड़ी थी। उसके ऊपर एक लड़का कुछ जबर्दस्ती करने की नीयत से झुककर उसे दबोचे हुए था। बगल में एक बूढ़ा कांस्टेबिल चुपचाप बैठकर खैनी मल रहा था।

'जानते हैं, बीस साल हो गया।' वकील ने विश्वंभर को बताया, 'यह लड़का कुछ गलत करना चाह रहा होगा। तभी लड़की का बाप थाने से इस कांस्टेबिल को बुला लाया था। तब तक लड़के का बाप भी 'स्टे आर्डर' लेकर आ गया। 'स्टेटस्-को'। जो जैसे है वैसे ही बना रहे। बीस साल हो गया। यह दोनों ज्यों के त्यों बने हुए हैं।'

विश्वंभर ने करीब जाकर देखा-लड़की थककर चुपचाप सो रही थी। 'कहो तो मैं एक लात मारकर इस साले को ढकेल दूँ, और तुम अपने घर चली जाओ', उसने लड़की से पूछा, 'आखिर तुम्हारी मुश्किल क्या है?'

लड़की की देह में हल्की सी जुंबिश हुई और वह अपनी निस्तेज आँखों से चुपचाप अदालत के गुंबद को देखने लगी।

'अब कुछ नहीं होगा।' वकील ने विश्वंभर से कहा, 'कचहरी में इनकी फाइलें धूल फाँक रही हैं। लड़की और यह लड़का, दोनों चार-छह साल में यहीं मर जाएँगे। शहर की सारी दुकानें नगरपालिका की जमीनों पर इसी तरह 'स्टे-आर्डर' लेकर चल रही हैं। मैं तो सोचता हूँ, अंग्रेज साले चूतिए थे, जो चुपचाप चले गए। एक 'स्टे-आर्डर' थमा देते गांधी जी को और मजे में बने रहते।'

एक अंतहीन सर्कस! एक विस्फोटक जादू! - विश्वंभर अपने-आप से बुदबुदाया, 'तुम खुद सोचो! तुम्हारी जगह कहाँ है?'

क्या करें? हे भगवान, कुछ समझ में नहीं आ रहा है - पिछली रात वह पत्नी के पास सोया था और सोच रहा था - क्या हम यूँ ही एक दिन मर-बिला जाएँगे? किसी को खबर भी नहीं होगी हमारी! बिना हमारे भी यह दुनिया ऐसे ही चलती रहेगी खुश! और कोई रास्ता नहीं! कैसे कर सकेगा वह बाप की हत्या! - वह जब भी अपने बारे में सोचता, उसे लगता, कोई उसे दबोचकर मन के सन्नाटे में चीख रहा है - तुम भूल जाओ कि पढ़े-लिखे हो! क्या करना चाहिए, क्या नहीं! यह सब भूल जाओ! बस इतना सोचो कि तुम्हें अमुक चीज चाहिए! और उसे ले लो! तुम कैसे तय कर सकते हो कि तुम्हारा रास्ता सही नहीं है! विश्वविद्यालयों के प्रोफेसर, अदालतों के न्यायमूर्ति, विधायक, मंत्री, विशालकाय इमारतों और गली-कूचों में फैले तमाम सरकारी-अर्धसरकारी संस्थान, विश्वबैंक की परियोजनाएँ, उनके ब्यूरोक्रेट्स, क्लर्क अपने-अपने तरीके से सब मिल-जुलकर यही काम कर रहे हैं। दो सम्राटों के युद्ध में जो जीतता वही पराजित सम्राट को बंदी बनाता, अपराध साबित करता और दंड देता है। पराजय और असफलता ही सबसे बड़ा अपराध है। कहीं मैं पागल न हो जाऊँ? -उसने अपने ऊपर दया करते हुए सोचा और हँस पड़ा - नहीं, नहीं! कहीं मरा हुआ

आदमी पागल होता है! कहीं मैं सचमुच तो नहीं मर चुका हूँ। महीनों हो गए, उसने जीवित आदमी की तरह कोई हरकत नहीं की थी।

इस विश्वास के लिए कि मैं जिंदा हूँ, उसने करवट बदला। चारों ओर अँधेरा था। उसने बिस्तर पर पत्नी को टटोला। पता नहीं जगी हैं या सोईं? उसने सोचा और उनकी बाँहों को पकड़कर अपनी ओर खींचा। पत्नी ने उसके हाथ को झटक दिया और उठकर बैठ गईं, 'मैं तुम्हारी क्या लगती हूँ।' उन्होंने पूछा।

विश्वंभर के हाथ ढीले पड़ गए। दस साल बीत गए शादी को। दो-दो बच्चियाँ और क्या अभी भी यह प्रश्न बचा रह गया है? शायद मेरे अलावा सब कुछ बचा हुआ है यहाँ, इस दुनिया में। वह अँधेरे को देखता चुप पड़ा रहा।

'मैं पूछती हूँ, क्या लगती हूँ मैं तुम्हारी?' पत्नी ने गला फाड़कर दुबारा पूछा।

विश्वंभर चुप।

'नहीं बोलोगे!' तड़पकर पत्नी ने उसे जगह-जगह से नोचना-बकोटना शुरू किया। विश्वंभर चुप पड़ा रहा।

न हिला, न डुला, न ही अपने को बचाने की कोई कोशिश की। पत्नी ने उसे कई थप्पड़ मारे और मुँह पर थूक दिया। उसने चुपचाप मुँह पोंछा और करवट बदलकर लेट गया। अचानक पत्नी बहुत जोर से चीखीं और रोने लगीं। एक ऐसी रुलाई जो औरतें विधवा होने के बाद रोती हैं।

घंटों बीत गए। एकांत सड़क पर टहलता विश्वंभर कस्बे से काफी दूर निकल आया था। पिछली ढेर सारी बातें एक स्वप्न कथा की तरह उसके भीतर से गुजर रही थीं। अँधेरी रात का सन्नाटा उसके आजू-बाजू फैलने लगा है। सड़क के किनारे गड़े पत्थर से उसने अंदाजा-सात किलोमीटर यूँ ही निरुद्देश्य चलता-चला आया है। दूर-दूर तक फैले गन्ने के खेत, तरह-तरह की आशंकाओं से डरी कोलतार की काली सड़क और सड़क के दोनों ओर घने पेड़ों की कतार-विश्वंभर को डर लगने लगा। उसने सोचा, अब घर लौट जाना ठीक रहेगा!

घर? इस शब्द मात्र से ही विश्वंभर काँपने लगता। उसके गाँव की गली-गली भटकता एक लावारिश कुत्ता है। किसी के घर रोटी पाता तो खा लेता और गाँव के बाहर सड़क के किनारे पूरी रात बैठा रहता। विश्वंभर जब भी रात को कस्बे से लौटता है, कुत्ता उसे देखकर जोर-जोर से भूँकते हुए काट खाने को दौड़ाता। सोए हुए गाँव को आगाह करता

है। शुरू-शुरू में जब विश्वंभर पढ़कर शहर से लौट आया था तब कुत्ता उसे नहीं पहचानता था। लेकिन अब तो इतने साल बीत गए। क्या अब भी इसे मेरी देह से शहर की और किताबों की गंध आती है? क्यों भूँकता है यह - विश्वंभर अनुमान लगाता - शायद इसकी आदत पड़ गई है। शायद कुत्ते को मजा आता है। शायद अपनी ऊब मिटाता हो। कई बार विश्वंभर ने सपना देखा कि यह कुत्ता उसे दौड़ा रहा है। एक खूँखार भेड़िये की शक्ल में बदल जाता कुत्ता और उसे चीथने लगता। विश्वंभर चीखता - बचाओ! बचाओ! उसकी आवाज किसी को सुनाई नहीं देती। वह भागता लेकिन पैर भारी हो जाते। किसी ऊँची छत से वह लुढ़क पड़ता और किसी फटी-पुरानी किताब के पन्ने की तरह हवा में लहराता नीचे बहुत नीचे गिरता चला जाता। एक भयानक सिहरन जैसे प्राण निकल गए हों बीच में। वह भय और पसीने से सराबोर काँपते हुए जाग जाता। वहाँ कुत्ता नहीं होता सिर्फ उसकी आवाज जो सपने में सुनाई दे रही थी, बरामदे में सोए पिता के खर्राटों में बची रह जाती।

गन्ने के खेतों में अचानक कुछ खड़खड़ाया। एक चमगादड़ हवा में लहराता हुआ उसने मुँह पर झपट्टा मारते-मारते रह गया। एक उल्लू चीखते हुए फड़फड़ाकर उड़ गया। विश्वंभर को डर लगने लगा - शायद रात काफी बीत चुकी है - दिन-दुपहरी वह कभी भी भूत-प्रेत पर विश्वास नहीं करता लेकिन उसके आसपास रात का अथाह सन्नाटा पसर चुका है। कहीं बहुत गहरे समाए संस्कारों में उसे डरावनी प्रेतात्माओं की आहट आने लगी। रोज राहजनी की घटनाएँ होती हैं। कहीं गश्ती पुलिस वाले ही न पकड़ लें। - भय के इन्हीं क्षणों में अचानक उसे लगा कि - शायद मैं जिंदा हूँ।

भूत, प्रेत, साँप, बिच्छू, डाकू या पुलिस इनका भय केवल जीवित आदमी को ही सताता है। तब क्या मैं जिंदा हूँ? पत्नी के पास लेटे हुए संभोग के चरम क्षणों में जिस जीवन का कोई निशान वह नहीं पा सका था, वही जीवन भय के उन क्षणों में उसे अपने भीतर काँपता हुआ महसूस हुआ। हाँ, शायद अभी तक मैं मरा नहीं हूँ - इस खयाल के साथ ही उसे रोमांच होने लगा। वह कहीं रुक गया। - क्यों न भय की आखिरी सीमा तक जाकर मैं जीवन को महसूस करूँ।

'थोड़ी ऊँचाई से आप दुनिया को देखें। वैसे नहीं जैसे सारे लोग देखते हैं। भीड़ से अलग हटकर देखें - आप पायेंगे कि दुनिया बदल गई है। अलग-अलग और कई-कई सुंदर रंगों में दुनिया दिखाई देगी।' किसी उपन्यास में पढ़ी हुई ये लाइनें उसे याद आईं। आज की रात ऐसे ही सही। मैं दुनिया को थोड़ी ऊँचाई से देखना चाहता हूँ - यह सोचकर वह सड़क के किनारे जामुन के पेड़ पर चढ़कर बैठ गया।

घनी अँधेरी काली रात। अपने बचपन से, गाँव से, घर से, माँ-बाप और पत्नी और दोनों बेटियों से डरकर विश्वंभर सड़क के किनारे जामुन के पेड़ पर छिपा बैठा है। इत्मीनान यह कि अब मुझे कोई नहीं देख सकता। सिर्फ दो नंबर कम पाने के कारण जो आई.सी.एस. की परीक्षा में रह गया था। वरना, संभव है वह आज किसी जिले में कलेक्टर होता और इस तरह पेड़ पर बैठने वालों को राष्ट्रीय सुरक्षा के मद्देनजर हवालात में बंद करा देता। अगर विश्वविद्यालयों को विद्वान प्रोफेसरों ने अपने बेटों, बेटियों और बहुओं की लीद से गंधा न दिया होता तो शायद यही विश्वंभर किसी जगह प्रोफेसर होता। यही विश्वंभर, यानी मैं, आज इस तरह इस एकांत रात के सन्नाटे में जामुन के पेड़ पर बैठा हूँ। अगर कोई मुझे यहाँ इस तरह देखे तो पागल समझेगा। जबकि मैं पागल नहीं हूँ। क्या पेड़ पर बैठना पागल होना है। - उसे सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' की याद आई।

कालिदास पेड़ की जिस डाल पर बैठे थे उसी को काट रहे थे। उसने सोचा, अगर मेरे पास एक कुल्हाड़ी होती? तरह-तरह के विचारों से उसे रोमांच हो रहा था। हाँ, वाकई मैं जिंदा हूँ! -उसने अपने को तसल्ली देते हुए सोचा।

अचानक नीचे कुछ लोगों की आहट सुनाई पड़ी। विश्वंभर ने देखा, कुल पाँच जन हैं। उनके हाथों में लाठियाँ हैं। शायद तमंचे भी। सबने मुँह बाँध रखे हैं। सड़क के दोनों ओर पेड़ों के पीछे वे लोग छिपकर बैठ गए। - अगर ये लोग मुझे देख लेंगे तब तो मार ही डालेंगे - विश्वंभर ने सोचा और दुबककर बैठ गया। - हे भगवान, खाँसी न आने पाए।

आध-एक घंटे तक वे लोग वैसे ही एकदम सावधान फौजी मुस्तैदी के साथ बैठे रहे। तभी दूर सड़क पर एक आदमी मोटर साइकिल से आता दिखा। वे सब सजग हो गए। करीब आते ही उनमें से एक ने मोटर साइकिल के पहिए में लाठी घुसेड़ दी। पीछे कोई औरत भी बैठी थी! छोनों भहराकर गिर पड़े। पलक झपकते ही उन लोगों ने आदमी को दबोचकर लाठियों से मारना शुरू किया। एक तो गिरने की चोट, ऊपर से लाठियाँ, वह आदमी मांसपिंड की तरह हवा में लहराने लगा। औरत कुछ समझ नहीं पा रही थी और उस मांसपिंड को पकड़ने की कोशिश में इधर-उधर गिरती-पड़ती हुँफ्-हुँफ् कर रही थी। इत्मीनान के बाद उन लोगों ने दोनों के शरीर को टटोला और घड़ी, पर्स, चेन, नाक-कान, अगल-बगल की सारी जरूरी चीजों को अपने हवाले किया और उन दोनों को गन्ने के खेत में ले जाकर बाँध दिया।

चार साइकिल वाले, तीन पैदल, दो स्कूटर, उन लोगों ने बारी-बारी सबको इसी पद्धति से निबटाया। एक बस को उन लोगों ने रोकने की कोशिश की लेकिन ड्राइवर भगा ले गया। 'अब रुकना ठीक नहीं है' उनमें से एक ने कहा, 'अगर बस वाले ने आगे खबर कर दी तो पुलिस आ जाएगी।'

अगर ये लोग यहाँ से हटें तो मैं उतरकर भागूँ - विश्वंभर सोच रहा था - कैसी मुसीबत आन पड़ी भगवान!

ठीक उसी समय सामने से एक कार आती दिखी। सारे बड़े-बड़े पत्थर सड़क पर लगा दो। सजग रहना। कहीं बस वाले की तरह यह भी न भगा ले जाय।

एक ने अनुमान लगाया, 'शायद मारुती है। लुढ़क जाय भले, निकल नहीं पाएगी।'

अचानक ब्रेक लगने के बाद एक लंबी चिंचियाती आवाज के साथ कार रुक गई। -क्या माजरा है? जानने के लिए ड्राइवर ने जैसे ही सिर निकाला वैसे ही तड़ की आवाज हुई और ड्राइवर की खोपड़ी खिड़की के बाहर झूलने लगी। बिना एक क्षण देर किए उन्होंने कार को चारों ओर से घेर लिया। पीछे एक तोंदियल बैठा था। 'मोटा सेठ है', उनमें से एक बुदबुदाया।

'नहीं हुजूर! मैं कोई सेठ नहीं हूँ। मैं सी.जे.एम. हूँ। चीफ जुडिशियल मजिस्ट्रेट एस.एन. पाठक। कथा वाचक शालिग्राम पाठक पूरे इलाके में सत्यनारायन भगवान की कथा के लिए मशहूर थे। उन्हीं का इकलौता बेटा, मैं सत्यनारायन पाठक। आपके जिले का सी.जे.एम. हूँ। घूस की कमाई खाकर मेरा पेट थोड़ा-सा बढ़ गया है। मैं कोई सेठ नहीं हूँ मीलाड!'

'बिना चीं-चपड़ किए जो कुछ है बाहर निकाल!' एक ने उसे धमकाया।

वह कुर्ता निकालने लगा तभी, 'यह तो रिवाल्वर लिए हुए है।'

'हुजूर, आप यकीन करें', वह बहुत डरा हुआ था और बोलने की कोशिश में उसके गले से सिर्फ अंss-अंss की ध्वनि भर आ रही थी। वह उन्हीं ध्वनियों को सहज और संयत कर बताना चाह रहा था - हाँ, यह रिवाल्वर ही है, लेकिन इससे आप सबको कोई खतरा नहीं। मैंने इसे कभी चलाया नहीं। मुझे विश्वास भी नहीं कि यह चलती है या नहीं। इसे छूते हुए भी मुझे डर लगता है। यह मेरा 'स्टेटस सिंबल' है। आप चाहें तो इसे ले जाएँ। डेढ़-दो लाख में बिकती है। मैं दूसरी नई खरीद लूँगा। मेरे पास पैसे की कोई कमी नहीं - यह सोचते हुए उसने देने के लिए रिवाल्वर हाथ में पकड़ा तभी दुबारा धायँ

की आवाज के साथ एक गोली उसके पेट में धँस गई। मोटी चर्बी की वजह से मेढक की तरह उसकी गर्दन दिखाई नहीं दे रही थी। उसके होंठ लटके थे और मुँह, पता नहीं दर्द से, भय से या अचरज से डेढ़-दो इंच खुला हुआ था। वह निष्क्रिय भाव से कभी अपने घाव और कभी उन लोगों को देख रहा था।

उन लोगों ने पीछे रखी अटैची उठायी और उसे तोड़ डाला। सौ-सौ की दस गड्डियाँ। नगद एक लाख रुपए का उपहार! वह कहीं से गेहूँ, भूसा, खेत या हेरोइन बेचकर ले आ रहा था। 'डिक्की तोड़ो! शायद और कुछ रखे हो!' वे आपस में बुदबुदाए।

विश्वंभर ने बहुत दिनों से न तो कोई फिल्म देखी थी और न नटों के करतब। भय और रोमांच के मिले-जुले उस दृश्य से उसे गुदगुदी होने लगी। पता नहीं भय से चीखने के लिए, या खूब जोर से ठठाकर हँसने के लिए उसका मुँह बार-बार खुल जा रहा था, लेकिन वह चुपचाप पड़ा रहा। आत्मीय स्वजनों के बीच सी.जे.एम.-एस.एन. पाठक न दर्द से कराह रहे थे, न छटपटाने जैसी कोई हरकत। वह अपने भल्ल-भल्ल बहते खून को चुपचाप देख रहे थे। उन लोगों ने उनके रिवाल्वर छीन लिए थे और अब डिक्की तोड़ रहे थे।

ठीक इसी समय सड़क पर एक-दूसरी रोशनी दिखाई दी। उन्होंने अनुमान लगाया - यह मोटर साइकिल की आवाज है। रात के एक बज रहे हैं। दारोगा रोज इसी समय इधर से गश्त पर गुजरता है। हाँ, दारोगा ही है। वे लोग गन्ने के खेतों में घुसकर लापता हो गए।

सड़क के बीचोंबीच गाड़ी खड़ी है। एक आदमी मरा पड़ा है। यह दूसरा भी है शायद! दारोगा ने गाड़ी के भीतर झाँककर देखा। इसे भी गोली लगी है। साँस चल रही है - धौंकनी की तरह घुर्र-घुर्र-दारोगा ने उसे हिलाकर देखा - अभी जान बची है। उसने आँखें खोल दीं और हाथ जोड़कर बोला, 'मुझे बचा लो दारोगा जी! मैं सी.जे.एम. हूँ। बिजनौर जिले के मशहूर कथा वाचक शालिग्राम पाठक का इकलौता वारिश सत्यनारायन पाठक। आप ही के जिले का चीफ जुडिशियल मजिस्ट्रेट श्री एस.एन. पाठक।'

इसके मुँह से दारू महक रही है - दारोगा ने उसे घृणा से देखा - एक झापड़ दूँ कनपटी पर तो सारी हेकड़ी भूल जाओगे। जैसे कोई पिटा हुआ आदमी थाने पर बे-वक्त आ गया हो। साले रात को दारू घोंट कर तफरीह पर निकलते हैं। अब तुम अपनी करनी भोगो। तुम्हें कोई नहीं बचा सकता। भगवान भी नहीं। सी.जे.एम. हो। बच जाओगे तो बावेला मचाओगे। लूट का माल माँगोगे। क्या करें... दारोगा असमंजस में पड़ गया।

कुछ समझ में नहीं आ रहा। कोई घबराने की जरूरत नहीं - सड़क पर खड़े-खड़े उसने सिगरेट सुलगाया।

उसी समय पेड़ की पत्तियों में खड़खड़ाहट हुई। कुछ पानी की बूँदें टपकीं। दारोगा ने आसमान की ओर देखा - बादल का एक टुकड़ा भी नहीं। 'हे भगवान, दारोगा डर गया - मरने के बाद तो नरक दोगे ही, जीते जी क्यों मूत रहे हो मुँह पर!' उसने टार्च जलाकर देखा - यह क्या! एकदम साक्षात् आदमी के वेश में! दारोगा थर-थर काँपने लगा - इतनी जल्दी यह भूत हो गया - हनुमान चालीसा की लाइनें ही नहीं याद आ रहीं - 'राम दुआरे तुम रखवारे, होत न आज्ञा बिन पैसारे।'

हर छठे महीने तबादला, पोस्टिंग, मंत्रियों, सचिवों और आफिसरों के यहाँ दौड़-धूप करते-करते बस इतना ही याद रह गया था दारोगा को - राम के दुआर पर अरे बिन पैसा कोई आज्ञा नहीं होती।

वहीं ऊपर बैठे-बैठे विश्वंभर गिड़गिड़ाया, 'मेरी कोई गलती नहीं है दारोगा जी! मैं तो बस तमाशा देख रहा था।'

भूत-प्रेत 'दारोगा जी' थोड़े बोलेगा। शायद कोई पागल हो या भिखारी-दारोगा का विश्वास बढ़ा, 'उतर मादरचोद!'

विश्वंभर पेड़ से उतरने लगा। डर के मारे सारा शरीर थर-थर काँप रहा था। हाथों में एकदम शक्ति नहीं। दारोगा ने दुबारा डाँटा तो वह तने तक आकर भहरा गया।

गिरते ही लगातार आठ-दस लात पेट में और तीन-चार चाँटे। उठने और खड़े होने की कोशिश में विश्वंभर सड़क पर लुढ़क-लुढ़क जाता। दारोगा ने उसका कालर पीछे से कसकर पकड़ रखा था, 'कैसे किया तूने यह सब?'

कैसे बताए विश्वंभर! गला बे-तरह कसा जा रहा था। आँखें जैसे बाहर आ जाएँगी। साँस लेने तक में दिक्कत। शब्द अटक-अटककर बाहर आने की कोशिश करते - 'मैं तो बस अज्ञेय और कालिदास...'

दारोगा की समझ में नहीं आया। क्या बक रहा है साला! कहीं सचमुच पागल तो नहीं है। या पागल होने का नाटक कर रहा है? उसने एक खूब जोर का चाँटा उसकी कनपटी पर मारा-सारा माल लूटकर यह बवाल मेरे लिए छोड़ दिया है - दारोगा ने सी.जे.एम. सत्यनारायन पाठक की ओर इशारा करते हुए कहा - सरकार के किस फंड से मैं इसे यहाँ से लादकर अस्पताल पहुँचाऊँ? 'चल उठा यह तमंचा और चला एक गोली इसकी

खोपड़ी पर', दारोगा उसे पकड़कर गाड़ी के पास ले गया जहाँ सी.जे.एम. की अटक-अटककर चल रही साँसों और निस्तेज आँखों में उम्मीद बची हुई थी।

- क्यों यह दारोगा मुझे मारना चाहता है? यह आदमी कौन है? यह ऊपर क्या कर रहा था? क्या आजकल लोग कीड़ों की तरह पेड़-पौधों की पत्तियों में बैठे रह रहे हैं? रात के एक-डेढ़ बजे अपने आस-पास फैली यह रहस्यमयी दुनिया उसकी समझ में नहीं आ रही थी। उन्हें अब तक यही मालूम था कि इस गणतंत्र में सिर्फ वही सर्वशक्तिमान हैं सिर्फ वही बिना तुक और तर्क का काम कर सकते हैं। सिर्फ वही महामहिम हैं जो चोरों, हत्यारों, तस्करों और नेताओं को संदेह का लाभ बाँटते फिरते हैं। संदेहाधिराज चुपचाप दारोगा और विश्वंभर को देख रहे थे।

'मैंने कभी तमंचे को छुआ नहीं है', विश्वंभर गिड़गिड़ा रहा था। दारोगा ने अब भी उसके कुर्ते का कालर कसकर पीछे से पकड़ रखा था, 'जो कह रहा हूँ, करो! वरना, मार डालूँगा।' उसके सिर पर खून सवार था।

'मैंने आज तक कभी गोली नहीं चलाई है।' भय से काँपते विश्वंभर की पैंट गीली हो गई थी। उसे लग रहा था, शायद चलाते समय गोली खुद को ही लग जाएगी। 'आज से रात क्या, मैं दिन में भी नहीं घूमूँगा। न पेड़ पर चढ़ूँगा। मैं किसी ऊँचाई से दुनिया को देखने का शौक नहीं रखूँगा। बस आज की रात आखिरी बार छोड़ दो दारोगा जी!' उसने अपने हाथ भिखारियों की तरह जोड़ लिए थे।

दारोगा किसी तरह की रियायत नहीं देना चाहता था। 'साला बे-वजह का समय बर्बाद कर रहा है।' उसने अपना रिवाल्वर विश्वंभर की ओर तान दिया, 'एक!' वह गिनती गिनने लगा। 'तीन के बाद नहीं गिनूँगा। दो...'

पता नहीं क्या... कब... और कैसे... हुआ? विश्वंभर कुछ नहीं जान पाया। हम ज्यादातर अपनी दिमागी हरकतों का दसवाँ हिस्सा ही जान पाते हैं। शेष बस यूँ ही अपने-आप घटित होता रहता है। उसी तत्काल बुद्धि से, जिससे ट्रक की चपेट में आते-आते स्कूटर या साइकिल अपने को बचा लेती है। विश्वंभर के हाथ से गोली चली। बस हल्का सा झटका महसूस हुआ। फिर गोली चलने की आवाज आई। कब, कैसे रुख बदल गया? वह नहीं जान पाया। सेकेंड के बीसवें हिस्से में सब कुछ हो गया। दारोगा धड़ाम से जमीन पर लुढ़ककर ब-मुश्किल दस सेकेंड तड़पा और शांत पड़ रहा।

जैसे बाघ के जबड़ों से छूटकर कोई हिरण छलाँग मारे। औंधे मुँह गिरता-पड़ता विश्वंभर गन्ने के खेतों की ओर भागा। अगल-बगल की कंटीली झाड़ियों में उलझकर

नीचे खड्ड में गिर पड़ा। हाँफती साँसों के नीचे दबकर वह थोड़ी देर तक वैसे ही जमीन पर पड़ा रहा। जैसे सपने में भागते पैरों की ताकत मर जाती है। यह सपना है, या मैं मर रहा हूँ? - विश्वंभर ने एक क्षण के लिए सोचा। उसने उठने की कोशिश की तो एकदम आराम से खड़ा हो गया। नहीं, यह सपना नहीं है। सपने से मिलता-जुलता कुछ ऐसा है जिसे वह पहली बार महसूस कर रहा है। उसने सोचा, गन्ने के खेतों में भागना ठीक नहीं होगा। सड़क के दूसरी ओर उसका गाँव है। एक क्षण ठहरकर उसने सड़क के दोनों ओर देखा। एकदम सन्नाटा। अभी कोई इधर आया नहीं है। वह चुपके से सड़क पर आकर खड़ा हो गया। तीन-तीन लाशें सामने पड़ी थीं। उसके हाथ का तमंचा कहीं गिर गया था। कुछ भी तो नहीं है मेरे पास। दारोगा का रिवाल्वर वहीं पड़ा था। उठा लूँ? - विश्वंभर ने सोचा। लेकिन दूसरे ही क्षण-कहीं जीवित न हो और मुझे दुबारा धर ले।

सड़क पर अभी भी दूर-दूर तक सन्नाटा था। गाड़ी के आगे बड़े-बड़े पत्थर पड़े थे। उसने एक बड़ा सा पत्थर उठाया और पूरी ताकत के साथ दारोगा के सिर पर पटक दिया। 'फच्च' के साथ खोपड़ी टूट गई। अब यह पूरी तरह मर चुका है - विश्वंभर ने रुककर इत्मीनान किया और रिवाल्वर को उठाकर चल दिया। सी.जे.एम. श्री एस.एन. पाठक अपनी निस्तेज आँखों से चुपचाप यह सब देखते रहे। भय के जिन क्षणों ने विश्वंभर के भीतर फुर्ती पैदा कर दी उन्हीं क्षणों में उनकी साँस डूब रही थी। वह सड़क से उतरकर खेतों के रास्ते अपने गाँव की ओर भागा। इस समय वह घर जाकर चुपचाप सो जाना चाहता था।

तीन-तीन हत्याएँ, एक सी.जे.एम; एक दारोगा और एक पता नहीं कौन। उसे पूरा इलाका पुलिस की छावनी सा नजर आने लगा। ढेर सारे जासूसी कुत्तों का झुंड उसे चारों ओर दौड़ता हुआ दिखाई दे रहा था। - क्या समय हो रहा होगा? - इस विचार के साथ ही उसने देखा कि घड़ी कहीं टूटकर गिर गई है। शायद पेड़ से उतरते समय टूट गई हो! शायद, जब दारोगा मार रहा था, तब टूट गई हो। यह भी हो सकता है कि जब वह खाई में गिर पड़ा था, तब टूट गई हो! - हर अपराधी कोई न कोई ऐसा निशान जरूर छोड़ देता है जिससे होते हुए पुलिस उस तक पहुँच जाती है। इस खयाल से डरकर वह और तेज भागने लगा।

वह लगातार चलता चला जा रहा है। कई घंटे बीत गए और रास्ता खत्म होने का नाम नहीं लेता। ब-मुश्किल दो-ढाई किलोमीटर ही उसका गाँव था। कहीं वह रास्ता तो नहीं भूल गया। जिस गाँव की धूल, माटी, पेड़, पोखर और एक-एक गड्ढे तक को वह बचपन से पहचानता रहा है क्या वही उससे छूट गया और वह जान भी नहीं पाया। शायद जान-बूझकर ही उसने अपना गाँव छोड़ दिया हो! लेकिन वह ऐसा क्यों करेगा?

आखिर इतनी तेज हाँफता, भागता और डरा हुआ वह कहाँ जा रहा है? अब चाहे जहाँ जाए-इन बातों में उसकी कोई दिलचस्पी नहीं।

आसमान में भोर का उजास फैलने लगा है। अरे, यह तो सामने करीमगंज विद्यालय का बड़ा मैदान दिख रहा है। उसके गाँव से चार कोस दूर। वह यहीं हाई स्कूल की परीक्षा देने आया था। वहाँ बगल में बसंतपुर गाँव। बुद्धन लोहार का घर। बीस साल हो गए। आज भी घर के सामने वही छप्पर। पहली बार घर से बाहर अकेले यहीं रहा था विश्वंभर। लोहारिन उसे माँ की तरह दुलारती और खिलाती थी।

बगल वाले अहाते में शायद आज भी ट्यूबवेल होगा। उन दिनों वह उसी ट्यूबवेल पर नहाने जाया करता था। गर्मियों के दिन में तेज और मोटी धार गिरता ठंडा पानी। वहीं उसने पहली बार उस लड़की को देखा था। बादामी रंग! बड़ी-बड़ी लेकिन उदास और थकी आँखें! खूब लंबे और घने बाल। लड़की अकसर कभी नहाने, कभी कपड़े धोने ट्यूबवेल पर आती और देर तक एड़ियाँ रगड़ती रहती थी। बुद्धन लोहार के छप्पर में किताबों के सामने बैठा विश्वंभर पूरे-पूरे दिन ट्यूबवेल के गिरते पानी को देखा करता। वस्तुतः लड़की हर समय वहाँ नहीं होती। लेकिन विश्वंभर के अतींद्रिय लोक में यह स्थूल तथ्य बे-मानी था! उसका मन किताबों में नहीं रमता।

उस एक दिन! किसी अजानी सुगंध से महकती दुपहरी का एकांत एक पवित्र और मद्धिम संगीत की लय में घुलकर मन की तलहटी में देर से गुनगुनाता रहा। उस समय ट्यूबवेल पर कोई नहीं था। विश्वंभर बहुत हिम्मत बटोरकर गया। लड़की नहा चुकी थी और अब अपने कपड़े समेट रही थी। - कहीं बुरा न मान जाय - विश्वंभर डर रहा था। -किसी से कुछ कह न दे-उसके होंठ काँप रहे थे - 'यह मैंने तुम्हारे लिए खरीदा है।' पैंतीस नए पैसे का एक छोटा लक्स साबुन था। गर्मी की दोपहर में सारा गाँव भीतर कहीं लेटा हुआ था। वह बार-बार इधर-उधर देखती और साबुन की गुलाबी सुगंध को छूने से डरती रही। एक थरथराती हुई गहरी आश्वस्ति से उसने विश्वंभर को देखा। - कहीं यह मुझे लालची न समझे! कहीं मेरा इनकार इसे रुला न दे - इसी ऊहापोह में उसने चुपके से साबुन उठाया और चली गई। जाते-जाते लड़की ने मुड़कर एक बार फिर विश्वंभर को देखा। वह वैसे ही एकटक उसे देख रहा था। लड़की भाग गई।

उस दिन गाँव में किसी के घर शादी थी। शहनाई की उदास धुन विश्वंभर के मन में धीरे-धीरे और देर तक सारी रात बजती रही। बीस साल हो गए। अब तो उसके बड़े-बड़े बच्चे होंगे। शायद वह आई हुई हो और आज भी ट्यूबवेल पर वहीं उसी तरह एड़ियाँ

रगड़ रही हो। उसका मन हुआ, ट्यूबवेल पर जाकर गिरते हुए पानी में देर तक नहाए और अपनी सारी थकान धो डाले। तभी बारात वाली शहनाई की उदास धुन दुबारा उसके आसपास बजने लगी। उसने सिर को झटका दिया और आगे बढ़ गया।

विद्यालय के मैदान में एक ओर हैंडपंप था। वहीं जाकर उसने अपने सारे कपड़े निकाले। धूल और मिट्टी के जो भी निशान बचे रह गए थे, उन्हें झाड़ पोंछकर उसने साफ किया। कहीं कोई खून का धब्बा तो नहीं रह गया है, इस इत्मीनान के बाद हाथ, पैर, मुँह और सिर के बालों को खूब अच्छी तरह उसने धोया। चोट और थकान से शरीर का पोर-पोर टूट रहा था, बावजूद इसके उसने अपने को तरोताजा महसूस किया। स्कूल के मैदान में, खेतों के ऊपर और गाँव के आसपास चारों ओर एक प्रसन्न उजाला फैलने लगा था। खेतों का रास्ता छोड़कर अब वह मुख्य सड़क पर आ गया था। वह एकदम शांत और सामान्य था जैसे कुछ न हुआ हो।

दो साइकिल सवार तेजी से जाते हुए आपस में बात कर रहे थे, 'बहुत बड़ा कांड है यह, इस इलाके का।' - शायद ये लोग उसी बारे में बात कर रहे हैं। - क्या मुझे उधर जाना चाहिए? लोग पहचान न जाएँ - उसने सोचा और उसे याद आया - आप इतमीनान से लोगों के बीच, लोगों की ही तरह गुजर सकते हैं। न तो आपके शरीर से किसी तरह की बास आती है। न चेहरे पर कोई भय होता है।

एक ट्रैक्टर कस्बे की ओर जा रहा था। विश्वंभर ने उसे हाथ देकर रोका और बैठ गया, 'सुना है सड़क पर आज किसी की हत्या हो गई है?' उसने ट्रैक्टर वाले से पूछा।

'हाँ, अभी भट्ठे पर ट्रक वाला कोयला लेकर आया था तो बता रहा था! तुम्हें कहाँ से मालूम हुआ?' ट्रैक्टर वाले ने उससे पूछा।

'अभी दो लोग बातें करते हुए साइकिल से जा रहे थे।' विश्वंभर ने बताया और सोचा - मुझे इस बारे में ज्यादा बात नहीं करनी चाहिए।

जब वह कस्बे में पहुँचा तो सुबह के सात-आठ बज गए थे। चारों ओर अनुमानों, आशंकाओं और अफवाहों के छोटे-छोटे जत्थे बिखरे हुए थे। रहस्य जानने के लिए आतुर और उत्सुक लोग उसी बारे में बातें कर रहे हैं। आम सूचना यह है कि - तीन गाड़ी पी.ए.सी. थाने पर आ चुकी है। डी.एम., एस.पी., ढेर सारे वकील, जुडिशियरी के छोटे-बड़े कई अधिकारी और डी.जे. सभी हैं। सुना है, डी.आई.जी. और आई.जी. भी आ रहे हैं। गाँव-गाँव जाकर पुलिस वाले लोगों को पकड़ ला रहे हैं। इलाके के सभी चोर, उचक्के, लुटेरे और सीटियाबाज तक फरार हैं।

आसपास गाँवों में जिसको जहाँ खबर मिलती, वह वहीं से चला आ रहा है। थाने के आसपास दूर-दूर तक लोगों का उत्कंठित हुजूम हवाओं की सरसराहट पकड़ने के लिए क्षण-प्रतिक्षण सजग है। कस्बे की ठहरी हुई बेस्वाद जिंदगी में ऊब और एकरसता को मिटाता यह एक रहस्य, रोमांच, थोड़ी सी दहशत और कौतूहल से भरा एक रोचक दिन है। समय-संदर्भ और संस्कृति के अनुसार आज हर आदमी मूल घटना का उत्तर आधुनिक पाठ कर रहा है। हाथी की नाक, पीठ, पैर और पूँछ जिसकी पकड़ में जो आता वह उसे ही मूल तथ्य प्रमाणित करने में खंडन-विखंडन की सारी पद्धतियाँ अपना रहा है। तरह-तरह की अफवाहें हवा में तैर रही हैं। मौसम गर्म है।

थाने से आ रहे एक वकील को लोगों ने घेर लिया, 'कुछ पता चला भाई साहब? हमें तो यह किसी बड़े गिरोह का काम लग रहा है।'

'ऐसा कुछ नहीं है,' वकील ने बताया 'केस एकदम खुला हुआ है।' (कहीं इसे मेरे बारे में पता तो नहीं लग चुका है - विश्वंभर डरकर भीड़ से थोड़ा अलग हट गया और ध्यान से वकील की बातें सुनने लगा।) वकील ने विश्वासपूर्वक कहा, 'पिछले महीने इन्हीं जज साहब ने एक पासी को सजा दी थी जबकि छोड़ने के लिए बीस हजार रुपया भी ले चुके थे। अब दलाल ने उन्हें दिया या खुद हड़प कर गया, भगवान जाने! बहरहाल - उसका मामा पुराना शातिर डकैत था। फैसले के दिन वह कचहरी में आया था और सबके सामने बोलकर गया था। जासूसी कुत्ते सीधे उसके घर तक चले गए। सब फरार हैं।'

'पुलिस का अपना मामला है। कहाँ बचकर जाएँगे।' एक दूसरे आदमी ने आश्वस्त होते हुए कहा।

दस-बारह पी.ए.सी. के जवान और एक सब-इंस्पेक्टर कुछ औरतों और बच्चों को एक रस्सी में बाँधकर घसीटते हुए लिए चले आ रहे हैं। आसपास के सारे लोग उधर ही देखने लगे, 'शायद ये उन्हीं पासियों के घर की औरतें हैं' वकील ने अनुमान लगाया 'चलो, चलकर देखते हैं।'

उनमें एक पैंसठ-सत्तर साल की बूढ़ी औरत थी जो गला फाड़कर जोर-जोर से चीख-चिल्ला रही थी। चौदह-पंद्रह साल की दो लड़कियाँ और तीन-चार महिलाएँ हैं। सबकी उम्र अठारह-बीस और तीस के बीच होगी। शायद पुलिस वालों ने उन्हें मारा पीटा है। सबकी-सब सहमी और डरी हुई हैं। बच्चे सब पाँच से ग्यारह-बारह वर्ष के बीच में थे। शायद ही उनमें कोई बुश्शर्ट पहने हो, सबके-सब नंग-धड़ंग भयभीत और भौंचक थे।

'इन बच्चों और लड़कियों को देखकर तो दया आ रही है। पुलिस वाले इन्हें क्या करेंगे?' भीड़ में ही किसी ने धीरे से कहा।

'किसे दया आ रही है भाई?' सब लोग उसी पर झाँव-झाँव करने लगे 'जाओ! जरा दारोगा जी की बीवी को देखो। रो-रोकर बेहोश हो गई हैं। दो साल की फूल जैसी नन्हीं बच्ची चकर-चकर ताक रही है। इन सालों का क्या है। पैदा होते ही गोदा बीन-बीनकर खाने लगते। साँप-सँपोले, बाप साले दिन भर जुआ खेलते और रात को छिनैती करते। अंग्रेजों ने अपने गजट में इन्हें जरायमपेशा लिखा है।'

'तो अंग्रेज साले कौन भले थे?' किसी दलित विमर्श ने प्रतिवाद किया 'उन बहनचोदों ने तो यह भी लिख दिया था कि मदारियों और जादू-टोने का यह देश आजादी के काबिल ही नहीं है।'

'यही तो बहुत बड़ी गलती हो गई।' एक बूढ़े सज्जन ने अफसोस करते हुए कहा, 'एक चींटी तक नहीं मार सकता था कोई। अब तो पिंडारियों का राज है।'

इतिहास के विवेचन-विश्लेषण में कहीं वर्तमान ही न छूट जाय, इसलिए बहस को मोड़ते हुए किसी ने एकदम नई सूचना दी, 'शायद किसी के घर पर आज रात 'बर्थ डे' पार्टी थी। उस आदमी का मुकदमा भी था आज इस जज की अदालत में। हाँ, शायद हत्या का मुकदमा था। सी.जे.एम. साहब वहीं पार्टी में गए हुए थे। हो सकता है कोई लेन-देन की बात रही हो और मामला न पटा हो। आजकल रोज-रोज की पार्टियों में बड़े लोग यही सब तो करते रहते हैं।'

'अगर यह बात सही है तो सौ प्रतिशत उन लोगों ने ही यह हत्या कराई है।' एक आदमी ने तथ्य की पूँछ पकड़ी और तर्क का सिरा दूर तक खींचता चला गया, 'आखिर इन पासी सालों को क्या मालूम था कि जज साहब रात को इधर से गुजरने वाले हैं। चलकर तब तक रहजनी करो और जब वह इधर आएँगे तो उन्हें भी मार देंगे। भला इस बात में कोई तुक है। हत्या और राहजनी दोनों अलग-अलग ढंग के अपराध हैं।'

'जिसके घर पार्टी थी पुलिस उसे पकड़कर लायी है। वह बता रहा है कि जज साहब से हमारे घरेलू ताल्लुकात थे। और रात ही हमने उन्हें एक लाख रुपए भी दिए थे।' एक कांस्टेबिल थाने के भीतर से अभी-अभी ताजी सूचना लेकर आया।

'अरे बाप रे बाप! एक लाख रुपया!' तमाशा देखने के लिए आए हुए गाँव के एक आदमी का मुँह बकलोल की तरह खुल गया। 'एक लाख रुपया! घूस! अच्छा हुआ साला मर गया। इन अफसरों ने तो गंधा दिया है।'

यह सुनते ही साथ वाले दूसरे आदमी ने उसे जोर से डाँटा, 'चुप साले! चारों ओर सी.आई.डी. लगी है। जेल जाएगा क्या?'

इस आकस्मिक उवाच और सी.आई.डी. की बात सुनकर वह आदमी तेजी से गाँव की ओर भागा।

संभव-असंभव अनुमानों के लिए नई-नई सूचनाओं में लगातार इजाफा हो रहा था।

किसी ने बताया कि उसी समय कुछ लोग बस से उतरे थे। थाने पर जाकर उन्होंने ही सूचना दी थी कि उधर राहजनी हो रही है। इसी के बाद छोटे वाले दारोगा जी कांस्टेबिलों के साथ वहाँ पहुँचे थे। पुलिस वाले खोज रहे हैं कि वह कौन लोग थे जिन्होंने थाने पर सूचना दी थी। उनमें कोई मिल नहीं रहा है।

थाने के बीचो बीच चबूतरे पर दस-बारह आदमी और एक औरत बैठी हुई है। सबके सिर-पैर और आँखों के आसपास सूजन और चोट के निशान हैं। 'यह कौन लोग हैं भाई?' किसी ने पूछा।

'यह सब तो वहीं खेतों में बंधे पड़े थे। पुलिस वाले लेकर आए हैं।' एक तीसरे आदमी ने बताया।

'तब तो इन लोगों ने देखा ही होगा। कुछ बता नहीं रहे हैं, क्यों इतनी बेरहमी से दारोगा को मारा गया?'

'सब साले घाघ हैं।' पी.ए.सी. के एक जवान ने अपनी मूँछ खुजलाते हुए कहा, 'रात को बाँस होगा तब सब साले जबान खोलेंगे। अभी तो अध्यात्म पढ़ा रहे हैं। कह रहे हैं कि जब लूटने वाले चले गए थे तभी दारोगा जी आए थे। उसके बाद आसमान से खूब तेज हेलीकाप्टर चलने जैसी आवाज आई। फिर हनुमान जी उतरे और उन्होंने एक बड़ा सा पत्थर उठाकर दारोगा जी की खोपड़ी पर पटक दिया। हमने उन्हें सड़क पर थोड़ी देर उछलते-कूदते देखा था - एकदम बंदर ही था वह। फिर पश्चिम ओर चला गया।'

वाकई यह तो बहुत बड़ा रहस्य है। कुछ तो तरक्की हुई कस्बे की। कल अखबारों में छपेगा। शायद दूरदर्शन के शाम वाले प्रादेशिक समाचार में भी आए।

विश्वंभर ने कल सुबह से ही कुछ खाया नहीं था। होठों पर पपड़ी जम गई थी। भूख से आँतों में ऐंठन हो रही थी। थोड़ी देर तक तो वह इधर-उधर टहलता और लोगों की बातें सुनता रहा। वही इस सारे करिश्मे का नायक है। इतने सारे लोग, और इतना सारा पुलिस महकमा उसी को खोज रहा है लेकिन किसी को गंध नहीं। जिसके पास सच है वह चुप है। और जो बोले जा रहे हैं उन्हें अपने ऊपर ही भरोसा नहीं। आशंका, अनुमान और अफवाह के इस मिले-जुले माहौल में सत्य चुपचाप छिपकर बैठा है। सभी कहते यह किसी बहुत बड़े गिरोह का काम है। कभी-कभी तो विश्वंभर को भी लगने लगता कि सचमुच यह किसी बड़े गिरोह का ही काम है। लेकिन तभी दारोगा के लात और घूसों की चोट ऐंठकर सत्य के ऊपर का सारा धुँधलका साफ कर देती।